Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 5, April-2019, ISSN 2230-7540

मनोविज्ञान और हिन्दी कथा साहित्य

Shiksha Rani*

M.A. in Hindi, B.ed. UGC NET (Hindi)

सार – ***किसी भी मनुष्य के मानसिक संवेगों, आन्तरिक अनुभूतियों, अतृप्त वासनाओं, दिवास्वप्नों और असामान्य व्यवहार के विश्लेषणपरक अध्ययन को 'मनोविज्ञान' की संज्ञा दी जाती है। कतिपय चरित्रा अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के होते हैं और कतिपय चरित्रा बहिर्मुखी प्रवृत्ति के। यह दीगर बात है कि मनोविज्ञान सामान्यजन के चिन्तन, व्यवहार और पेचीदगी भरे संवेगों का अध्ययन करता है अथवा विचित्र और अव्यवहारिक मनोवृत्ति के पात्रों का। मनुष्य के विक्षुब्ध होने अथवा उदात्त बने रहने के पीछे कुछ अनुवांशिक प्रभाव होते हैं और कुछ स्वभावजन्य विशेषता होती है।***

हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण को आधार बनाकर बहुत कम शोधपरक कार्य हुए हैं। प्रथम महायुद्ध की विभीषिका ने विश्वस्तर पर अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति पर सोचने के लिए बाध्य किया है। किसी व्यक्ति-विशेष के नेपोलियन अथवा हिटलर बनने के पीछे कतिपय विशिष्ट कार्य-कारण होते हैं। हर एक व्यक्ति न माक्र्स बन सकता है, नायड या एडलर। युंग ने आर्किटाइपल इमेजस के साथ मिथक और दिवास्वप्नों की बात की है। प्रत्येक रचनाकार अपने मानसिक अभावों की पूर्ति कला-जगत के संसार में करता है। वह अपने व्यक्तित्व की अपूर्णता या लघुता को किसी पात्रा-विशेष में पूर्णता या असीमित भाव में देखना चाहता है। हिन्दी कथा साहित्य में लिबिडो, इडिपस ग्रन्थि, हीन मनोग्रन्थि, उच्च मनोग्रंथि, अन्तःप्रज्ञा, अंतश्चेतना को आधार बनाकर मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन कम हुए हैं।

-----------------------------------x-----------------------------------

मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य:

साहित्य मूलतः किसी वाद से प्रभावित नहीं होता, साहित्यकार भले ही होता हो। साहित्य अपनी युगीन स्थितियों की उपज होता है, जो विषयवस्तु बनकर साहित्य में आती है, आवश्यकतानुसार हम वादों, प्रतिवादों या संवादों के परिप्रेक्ष्य में हम उसका मूल्यांकन करते हैं। राजेन्द्र यादव के शब्दों में, कला-सर्जना, कलाकार की मानस-प्रक्रिया से ढलकर रूप लेती है वह इस संसार के समानान्तर स्वतंत्रा सृष्टि ही तो है... स्वतंत्रा सृष्टि अर्थात् निर्माण और संघटन के अपने नियमों, परम्पराओं से प्रेरित-परिचालित..... कलाकार इसके लिए मिट्टी भले ही इस वस्तु संसार से लेता हो, रूप उसका वह अपने ही स्वप्नों, स्मृतियों, आवश्यकताओं, दबावों, कुण्ठाओं और दृष्टियों के अनुरूप देता है।[1] युंग ने तो फ्मानव के अवचेतन सम्भाग को सृजन-शीलता की कृति कहा है, जिसके माध्यम से समूची मानव-जाति के श्री, सौंदर्य एवं समृद्धि का मार्ग प्रशस्त हुआ है और इसीलिए युंग ने इस सृजनात्मक शक्ति के मूलाधार अवचेतन सम्भाग को वैयक्तिक चेतन की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी एवं महत्त्वपूर्ण माना है।[2] हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान के विभिन्न तत्त्व पाये जाते हैं। हिन्दी के प्राचीन तथा आधुनिक रचनाकारों में इसका थोड़ा आभास मिलता है। अपनी रचनाओं में प्रयुक्त उस नजरिये को, मानव मन को परखने वाली उनकी प्रतिभा का द्योतक मानना ही उचित होगा।

मनोविज्ञान और हिन्दी कहानी:

हिन्दी कथा-साहित्य के सरताज मुंशी प्रेमचंद ने कहा है, फ्सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।[3] इसी से हिन्दी कथा-साहित्य के अंतर्गत मनोविज्ञान का स्थान निश्चित हो जाता है। उनकी खुद की कहानियों-मैकू, कफन, पूस की रात, पंत परमेश्वर आदि में मनोवैज्ञानिक तथ्य भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं। उनके कई पात्र परिस्थितिवश कुण्ठित, आक्रामक, हीनता ग्रन्थि से पीड़ित तथा पलायन वृत्ति के हैं।

प्रेमचंद के बाद यदि किसी कहानीकार का नाम हिन्दी साहित्य जगत में लिया जाता है तो वह है जयशंकर प्रसाद का। प्रसाद अन्तर्मुखी कथाकार रहे हैं। उनकी कहानियों का मनोवैज्ञानिक, अन्तःसंवेदना को बढ़ा देता है। उनकी 'मधुवा',

www.ignited.in

'पुरस्कार' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। उनके समकालीन कहानीकार जैनेन्द्र की कहानियों में यौन कुण्ठा, पात्रों के अन्तद्र्वन्द्व तथा मनस्ताप आदि मनोवैज्ञानिक प्रत्यय पाये जाते हैं जो व्यक्ति के एकाकीपन तथा मन की रिक्तता के द्योतक हैं। इस दृष्टि से उनकी 'एक पन्द्रह मिनट', 'नीलम देश की राजकन्या' आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है। इलाचन्द्र जोशी की 'यज्ञ और जागृति' कहानी के अंतर्गत फ्रायड के उदात्तीकरण तथा 'विद्रोही' में असामान्य मनोग्रन्थियों का चित्रण पाया जाता है। उन्होंने फ्रायड के मनोविश्लेषण ज्ञान से कभी किसी घटना के बीच पात्र को गहन आत्ममंथन करता दिखाया है और कभी पात्रा की मानसिक ग्रन्थि के अनुरूप घटनाओं का संयोजन करके कहानी बुनी है। वे दोस्तोयवस्की के मनोविश्लेषण से आक्रान्त थे और मार्सल पुस्त तथा जेम्स जायस के चेतना प्रवाही लहजे को उतारना चाहते थे। डायरी, पत्र या पुनरावलोकन के शिल्प में उनकी कहानियों के विलक्षण नायकों को अपने भीतर उतरते जाने की भरपूर गंुजाइश थी। उनके पात्रों की समस्या न सामाजिक है, न वैचारिक........... वह तो किसी मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि से ग्रस्त त्रास्त होने की समस्या है, जिसे प्रारंभ या अन्त में कहीं 'समाज' से नत्थी कर दिया जाता है। उन पर आरोप यह लगाया जाता है कि उन्होंने फ्रायड के सैक्स और स्वप्न सिद्वान्त के कुछ सूत्रों को लेकर 'केस हिस्ट्रियाँ' लिखी हैं, कहानी नहीं। यह सच है कि उनके पात्रों में इन ग्रन्थियों से मुक्ति की छटपटाहट है। कह सकते हैं कि जैनेन्द्र और अज्ञेय की अपेक्षा उन्होंने 'जीवन की पर्फाँक' को समतल फैलाव की दिशा में नहीं, ऊपर से नीचे की ओर उतरे हैं, चेतन-अवचेतन-उपचेतन के अनेक अप्रीतिकार स्तरों का उद्घाटन उन्होंने किया है कि इस प्रक्रिया में उनके पात्र साधारण सामान्य की बजाय विलक्षण, विलकलांग और हीन होते हुए दिखने लगे हैं।[4] उनकी 'प्रेम और घृणा', 'एकाकी मैं', 'परित्यक्ता', 'डायरी के नीरस पृष्ठ' आदि कहानियाँ उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की परिचायक हैं। अज्ञेय की कहानियाँ राष्ट्रीय स्वतंत्रता, क्रान्तिकारिता पुलिस की सींटी, मानसिक अन्तद्र्वन्द्व (पुरुष के भाग्य), कुण्ठाओं (चिड़ियाघर) आदि पर आधारित है। यशपाल की 'मक्रील', 'जीवदया' आदि कहानियाँ भौतिक-द्वन्द्व तथा युगीन समस्याएँ रेखांकित करती है तो भगवतीचरण वर्मा की 'फूलों की क्रूरता' सामाजिक विद्रुपता दर्शाती है।

उत्तर प्रेमचन्द युगीन रचनाकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी ने व्यक्ति के व्यक्तित्व और अन्तद्र्वन्द्व को लेकर कहानियाँ लिखी हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में मिथ्या अहम् भावना को सामाजिक विकास के लिए हानिकारक बताया है। उपेन्द्रनाथ अश्क की 'डाची' कहानी मानव-जाति की आंतरिक पीड़ा, अतृप्त इच्छाओं तथा बेबसी को उजागर करती हैं। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानियाँ मानव के अन्तर्मन में स्थित शाश्वत सत्यों को उद्घाटित करती है। इस शृंखलांतर्गत अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, रांगेय राघव, पाण्डेय बेचैन शर्मा 'उग्र' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

सन् 60 के बाद 'नयी कहानी' पारिवारिक तथा सामाजिक बिखराव, मूल्यों के विघटन, अन्तद्र्वन्द्व, टूटते संबंध, स्वार्थपरता, मनोग्रन्थियाँ आदि विषयों को लेकर चल पड़ी। राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, अमरकान्त, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, उषा प्रियम्वदा आदि कहानीकारों का कथा-क्षेत्रा में योगदान अत्यन्त स्पृहणीय है। राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा', 'खुले पंख और टूटे डैने', 'तलवार पंच हजारी', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'ढोल', 'अपने पार', 'छोटे-छोटे ताजमहल' आदि कहानियों में व्यक्तित्व के विघटन तथा कुण्ठाओं को खूब चित्रित किया गया है।

मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी', 'परमात्मा का कुत्ता', 'पहचान' आदि कहानियाँ तथा कमलेश्वर की 'तलाश', 'दुःखभरी दुनिया', 'राजा निरवंसिया', 'सुबह का सपना' आदि कहानियाँ पौरुष-हीनता, भय, कुण्ठा, मनोविदलता आदि मनोवैज्ञानिक प्रत्ययों का रेखांकित करती है। महिला कहानीकारों में उषा प्रियम्वदा ने अपनी 'जालें', 'चाँद चलता रहा', 'पिघलती हुई बर्फ', 'वापसी' आदि कहानियों में प्रेम की असफलता, दाम्पत्य जीवन-संघर्ष, मूल्यों के विघटन आदि की मार्मिक व्यंजना की है। निर्मला वर्मा की 'डायरी का खेल' और 'परिन्दे', फणीश्वरनाथ रेणु की 'पंचलाइट', 'ठेस' आदि कहानियों में क्रमशः अहम् भावना तथा काम-ग्रन्थि दृष्टव्य है। मन्नू भण्डारी की 'यही सच है', 'तीसरा आदमी', 'क्षय', 'अकेली', 'सजा' आदि कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंध, अहम् भावना, मानसिक क्षय, मनस्ताप आदि मनोवैज्ञानिक प्रत्ययों को उकेरा गया है। इसी तरह शिवप्रसाद सिंह की 'नन्हों', 'कलंकी अवतार', ज्ञानरंजन की 'संबंध', गिरिराज किशोर की 'केस', दूधनाथ सिंह की 'सपाट चेहरे वाला आदमी', धर्मवीर भारती की 'गुल की बन्नों', काशीनाथ सिंह की 'लोग बिस्तरों पर', सिद्दीकी की 'सनक', 'तीन काल कथा', ममता कालिया की 'उसका यौवन', 'जिन्दगी सात घंटे बाद की' आदि कहानियाँ मनोविज्ञान के प्रभाव में लिख गयी हैं।

उपर्युक्त रचनाकारों के अतिरिक्त भीमसेन त्यागी, हरिशंकर परसाई, रविन्द्र कालिया,प्रयाग शुक्ल, शैलेश मटियानी आदि कहानीकारों ने भी इस क्षेत्र में पर्याप्त योगदान दिया। संक्षेप

में यह कि मनोविज्ञान संबंधी प्रत्यय हिन्दी कहानियों में भरपूर मात्रा में मिलते हैं जो कि आधुनिक जीवन के उपज है।

मनोविज्ञान और हिन्दी उपन्यास:

प्रत्येक रचनाकार अपने आंतरिक तथा बाहय परिवेश को अपनी रचनाओं में स्थान देता है। रचना चाहे यथार्थपरक हो या काल्पनिक, उसमें वर्णित पात्रा भावुक, संवेदनशील, आक्रामक, स्थितिप्रज्ञ आदि 'टाईप' होते हैं। कतिपय उपन्यासों में पात्रों के मानसिक क्रिया-कलाप ज्यादा पाये जाते हैं। उपन्यासों में प्राप्त यही प्रत्यय उन्हें उपन्यासों की अन्य कोटियों से भिन्न रखता है तथा वे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहलाते हैं। डॉ. हरदयाल के शब्दों में कहें तो, हिन्दी में सामान्यतः उन उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक उपन्यास माना गया है, जिनमें मनुष्य के बाहय क्रियाकलाप को महत्त्व न देकर उसके मानसिक क्रिया-कलाप को महत्त्व दिया जाता है और यह मानसिक क्रिया-कलाप असामान्य मनोविज्ञान अथवा मनोविश्लेषण शास्त्रा के अनुकूल हैं।

अस्तु हम तिलस्मी-ऐयारी तथा जासूसी-डकैती आदि उपन्यासों में भी मनोविज्ञान से संबंधित प्रत्ययों को ढूँढने का प्रयास कर सकते हैं। प्रेमचंद, उपन्यासों में अपनी 'सामाजिक प्रतिबद्धता' के लिए सराहे जाते हैं तथा जैनेन्द्र 'मनोवैज्ञानिकता' के लिए। इसका मतलब यह नहीं कि प्रेमचंद ने अपने पात्रों की मानसिक दशा को दर्शाया ही नहीं या जैनेन्द्र महज मनोविश्लेषण ही करते रहे। प्रेरमचंद का 'गबन' उपन्यास तो मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता को दर्शाता दर्पण है। 'गोदान' का नायक शुरू से अंत में अपने अभावों की पूर्ति में ही तो लगा रहता है। उनके 'निर्मला' उपन्यास को तो हिन्दी का ग्रन्थ मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहलाने का गौरव प्राप्त है।[5]

दरअसल प्रेरमचंद ने हिन्दी उपन्यास को जिस सीमा तक विकसित कर दिया वहाँ हिन्दी के उपन्यासकारों के सामने दो ही विकल्प शेष थे-या तो वे प्रेमचंद का अनुकरण करते और अपनी कोई निजी पहचान न बनाते या कथावस्तु और कथाशिल्प दोनों की दृष्टि से नई दिशाओं की खोज करते। प्रेरमचंदोत्तर अनेक उपन्यासकारों ने दूसरा विकल्प चुना और हिन्दी उपन्यास को विविध दिशाओं में विकसित किया। इन नई दिशाओं में से एक प्रमुख दिशा मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की है।[6] माक्र्स और नयड के सिद्धान्तों ने हिन्दी साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया। इसके प्रभावस्वरूप हो अथवा 'यौन शुचिता के नैतिक आतंक से ग्रस्त भारतीय मध्यवर्गीय समाज में पश्चिमी शिक्षा दीक्षा, औद्योगकीकरण और नगरीकरण के कारण रूढ़ियों का टूटना।'[7] हो, हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास की धारा चल पड़ी। जैनेन्द्र के 'परख' उपन्यास से मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात माना जाता है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में प्रथम बार पाठकों को पात्रों के अंतरंग वर्णन के जरिए अपने आपको जानने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ। जैनेन्द्र के ही शब्दों में कहें तो, 'मैंने जगह-जगह कहानी के तार की कड़ियाँ तोड़ दी हैं। वहाँ पाठक को थोड़ा कूदना पड़ता है और मैं समझता हूँ कि पाठक के लिए यह थोड़ा प्रयास वांछनीय होता है, अच्छा ही लगता है। .... सभी पात्रों को मैंने अपने हृदय की सहानुभूति दी है। ... दुनिया में कौन है जो बुरा होना चाहता है और कौन है जो बुरा नहीं है, अच्छा ही अच्छा है? न कोई देवता है न पशु। सब आदमी ही हैं, देवता से कम ही और पशु से ऊपर ही।[8] उनके 'परक', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन', 'मुक्तिबोध', 'अनन्तर' आदि उपन्यास मानव के अन्तर्मन में चलने वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म हलचलों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं। वे 'व्यक्ति-चरित्र' को लेकर चलते हैं। उनके पात्रों का अक्सर 'राँग-नंबर' लग जाता है, जिसके चलते सारी मानसिक परेशानियाँ शुरू हो जाती हैं। ये पात्रा प्रेम त्रिकोण में ही घूमते नजर आते हैं। उनके स्त्री पात्रों की त्रासदी यह है कि वे जिस पुरुष से प्रेम करती हैं, उसके साथ उनका विवाह नहीं हो पाता और जिसके साथ विवाह बंधन में बँध जाती हैं, उससे वे प्रेम नहीं करती। यहीं से उनकी नैतिकता तथा आत्मसुख में संघर्ष उत्पन्न होता है। पति-प्रेमी तथा पत्नी-प्रेमिका वाला यह द्वन्द्व कामकुण्ठा को जन्म देता है। जैनेन्द्र के उपन्यासों में मुख्य रूप से यही मनोवैज्ञानिक प्रत्यय उभर कर आया है।

दूसरे ख्याति प्राप्त मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इलाचन्द जोशी ने अपने 'घृणामयी' (लज्जा), 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'पर्दे की रानी', 'निर्वासित', 'मुक्ति पथ', 'सुबह के भूले', 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी', 'भूत का भविष्य' आदि उपन्यासों के अंतर्गत अहम्वादिता, कुण्ठा, मनोविकृति आदि प्रवृत्तियों को चित्रित किया गया है। कतिपय आलोचक उन्हें फ्रायड के 'मनोविश्लेषणवाद' तथा युंग की 'जातीय अवचेतना' की धाणा से प्रभावित मानते हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के धारा-प्रवाह में अज्ञेय का अपना अलग ही स्थान है। डॉ. रांगा के अनुसार, 'शेखर: एक जीवनी' से पहले का चरित्र चित्रण चित्रपट पर दिखायी गयी 'सिनेमा स्लाइडों' के समान आन्तरायिक था, हिन्दी-उपन्यासों में 'चलचित्रों' का सा विकासमान चरित्र और वह भी अन्तर्दृष्टित (सब्जेक्टिवली) दिखाने का श्रेय अज्ञेय को ही है।[9] अपने 'शेखरः एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' आदि उपन्यासों में उन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास,

www.ignited.in

कुण्ठाओं तथा उसके विकृत व्यवहार का अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने अपने उपन्यासों 'निमन्त्रण', 'विश्वास काबल' आदि में स्त्री-पुरुष संबंध (वैवाहिक तथा विवाहेत्तर), कुण्ठाएँ आदि मनोवैज्ञानिक तथ्यों को रेखांकित किया है। इनके यहाँ भी जैनेन्द्र के से 'प्रेम त्रिकोण' द्दष्टव्य हैं। डॉ. देवराज ने अपने उपन्यास 'पथ की खोज' (दो भागों में), 'बाहर-भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'मैं, वे और आप', 'अजय की डायरी' तथा 'दूसरा पत्र' में मनोग्रन्थियों तथा यौन समस्याओं का तटस्थतापूर्वक विश्लेषण किया है। 'दूसरी बार' के रचयिता श्रीकान्त वर्मा स्थता ने स्त्री-पुरुष संबंधों का अत्यन्त गहराई से चित्रण किया है। उनका नायक अपनी पत्नी के सामने अपने आपको हीन समझता है फलतः उसमें विद्रोह की भावना जागती है तथा वह आक्रामक हो जाता है। वह स्वयं स्थितियों के वश में हो जाता है। 'प्यार और घृणा' दो परस्पर विरोधी भावनाएँ उसमें जन्म लेती हैं। इस प्रकार उनके उपन्यासों में आत्महीनता, आक्रामकता, काम-ग्रन्थि तथा विसंगतिबोध आदि मनोवैज्ञानिक तथ्य पाये जाते हैं। गिरिराज किशोर ने भी अपने उपन्यास 'अंतध्र्वंस', यात्राएँ' आदि में मानसिक तनावों तथा ग्रन्थियों का चित्रण किया है।

अन्य उपन्यासकारों में शरद देवड़ा का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने 'टूटती इकाइयाँ', 'आकाश आप बीती' आदि उपन्यासों के मातहत् मानसिक द्वन्द्व को विश्लेषित किया है। धर्मवीर भारती ने 'गुनाहों का देवता' में वासना को जीवन में आवश्यक बताया है, तो नरेन्द्र कोहली ने 'आतंक' में मानव के आन्तरिक तथा बाह्य पक्ष को महानगरीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है। प्रतापनारायण मिश्र ने अपने उपन्यासों में नगर के अभिजात् वर्ग की मानसिकता का चित्राण किया है तो सियारामशरण गुप्त ने 'नारी', महेन्द्र भल्ला ने 'एक पति के नोट्स', गिरिधर गोपाल ने 'चाँदनी के खण्डहर', लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'खाली कुर्सी की आत्मा', मोहन राकेश ने 'अंधेरे बंद कमरे', अन्नपूर्णा देवी ने 'परत दर परत', डॉ. प्रभाकर माचवे ने 'साँचा', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'सोया हुआ जल', निर्मल वर्मा ने 'वे दिन', गोविन्द मिश्र ने 'वह अपना चेहरा', गंगा प्रसाद विमल ने 'मरीचिका', उषा प्रियम्वदा ने 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' तथा 'रुकोगी नहीं राधिका', नरेश महेता ने 'डूबते मस्तूल', राजकमल चैधरी ने 'मछली मरी हुई' तथा 'देवगाथा', भारत भूषण अग्रवाल ने 'लौटरी लहरों की बाँसुरी', योगेश गुप्त ने 'उनका फैसला' आदि उपन्यासों में मानव-जीवन के आन्तरिक क्रिया-कलापों, मनोग्रन्थियों, कुण्ठाओं आदि का विश्लेषण किया है।

हिन्दी कहानियों अथवा उपन्यासों में वर्णित पात्र हमारे आसपास के जनजीवन में ही बिखरे पड़े हैं। साहित्य मूलतः सामाजिक चरित्रों, पात्रों और परिवेश का ही कलात्मक प्रतिबिम्ब होता है अतः कहीं पर हीन मनोवृत्ति के पात्र या चरित्र नजर आते हैं तो कहीं पर उच्च मनोग्रन्थि के। जब हमारा वर्तमान जीवन ही इर्ष्या, घृणा, प्रतिशोध और अभावों से भरा पड़ा है तब सहज स्नेह, विश्वास और प्रेम के कण 'क्षतिपूर्ति' के कार्य-कारण बन जाते हैं। मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन से तात्पर्य केवल इडिपस ग्रन्थि, लिबिडो या अतृप्त वासनाओं का चित्राण नहीं है बल्कि किसी पात्र या चरित्र विशेष का आक्रामक रूप, असहाय रूप, उदात्त रूप हमें विक्षुब्ध भी करता है और चमत्कृत भी। पूर्व विवेचित मनोविश्लेषणपरक सिद्धान्तों के विवेचन में रोजर्स ने संकेत दिया है कि एक व्यक्ति को इन्सान बनने की प्रक्रिया में विभिन्न सोपानों से गुजरना पड़ता है। अतृप्ति, वासना, आवेग, आत्म-विश्लेषण, प्रेम की आकुलता और व्यक्तित्व निर्माण की बलवती इच्छा मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन के अलक्षित सोपान हैं, जिनकी ओर सुधी विद्वानों का ध्यान कम आकर्षित हुआ है।

मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन को आधार बनाकर समकालीन उपन्यास सृजना का विश्लेषण एक जटिलतम और संश्लिष्ट कार्य हो सकता है। ऐसा प्रयास गंगाधर झा, धनराज मनधाने तथा अन्य सुधी विद्वानों एवं शोध-चिन्तकों ने किया है। गोवा जैसे अहिन्दी भाषी प्रदेश में समुचित पुस्तकालय संसाधन तथा अधुनातन पत्र-पत्रिकाओं के अभाव में समूचे समकालीन उपन्यासों परकाम करना सम्भव प्रतीत नहीं होता, विशेषकर मनोविश्लेषण जैसे जटिल संश्लेषण में। मनोविश्लेषण संबंधी सिद्धान्तों के विवेचन के आलोक में विभिन्न उपन्यासकारों को आधार बनाकर शोधपरक कार्य करना अधिक जटिलता तथा गहनता का कार्य होता पर इससे रचनाकार-विशेष के कथा-लेखन का गहराई से अध्ययन कर पाना सम्भव नहीं हो पाता। रचना और आलोचना के क्षेत्र में अक्सर कुछ मिथक् और लीजेण्ड पनप जाते हैं। किसी रचनाकार विशेष को एक खास द्दष्टिकोण, विचारधारा या आंदोलन से जोड़कर देखने की प्रवृत्यात्मकता और प्रारूपता निर्मित होती है-उदाहरणतः राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य को प्रगतिवादी चिन्तन तथा जनवादी लेखन के सन्दर्भ में विश्लेषित किया गया है, समकालीन आलोचकों एवं शोधकत्ताओं द्वारा। लेकिन उनके कथा साहित्य को मनोविश्लेषण के आधार पर विश्लेषित और विवेचित करने के प्रयास नहीं के बराबर हुए हैं।

संदर्भ सूची:

1. राजेन्द्र यादव, एक दुनिया: समानान्तर, पृ. 17
2. भवानीशंकर उपाध्याय, कार्ल गुस्ताव युंग: विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान, पृ. 259
3. प्रेमचंद, कुछ विचार, पृ. 30
4. राजेन्द्र यादव, कहानी: स्वरूप और संवेदना, पृ. 36
5. सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास, पृ. 188-189
6. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास के वर्ष, पृ. 52
7. वही, वही, पृ. 66
8. जैनेन्द्र कुमार, परख 'कुछ शब्द'
9. रणवीर रांगा, मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास की वृहत्रीय, पृ. 16

Corresponding Author

Shiksha Rani*

M.A. in Hindi, B.ed. UGC NET (Hindi)